संस्कृत प्रचार पुस्तकमाला सं० ४६

बाल-
सदाचार-शिक्षा

[बालकों के भावी भव्य जीवन के निर्माण के लिए उन्हें आरंभ से ही सिखाने योग्य भारतीय सदाचार एवं सभ्यता सम्बन्धी शास्त्रीय शिक्षाओं का लघु संकलन]

ग्रन्थालय
आगत क्रमांक 1329
दिनांक

सार्वभौम संस्कृत प्रचार कार्यालय
वा रा ण सी ।

3
7863

संस्कृत प्रचार पुस्तकमाला सं० ४६

बाल-

सदाचार-शिक्षा

[बालकों के भावी भव्य-जीवन के निर्माण के लिए उन्हें आरंभ से ही सिखाने योग्य भारतीय सदाचार एवं सभ्यता सम्बन्धी शास्त्रीय शिक्षाओं का लघु संकलन]

संकलयिता एवं सम्पादक

वासुदेव द्विवेदी, वेदशास्त्री साहित्याचार्य

(सम्पादक-संस्कृत प्रचार पुस्तकमाला)

सार्वभौम संस्कृत प्रचार कार्यालय

वा रा ण सी ।

प्रकाशक—

सार्वभौम संस्कृत प्रचार कार्यालय

डी० ३८।२० हौजकटोरा,

वा रा ण सी ।

संस्करण : प्रथम

संख्या : एक हजार

मूल्य : अस्सी नये पैसे

मुद्रक—

बैजनाथ प्रसाद

कल्पना प्रेस

रामकटोरा रोड, वाराणसी ।

तपोमूर्ति

पूज्यपाद, जगद्गुरु

श्री शङ्कराचार्य जी महाराज

श्री काञ्चीकामकोटिपीठ

की

सहायता से प्रकाशित

आवश्यक निवेदन

"शौचाचारांश्च शिक्षयेत्" इस मनुवचन के अनुसार संस्कृत के विद्यार्थियों को प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर भारतीय सदाचार एवं सभ्यता का विस्तृत और विवेचनात्मक ज्ञान कराना तथा सर्वसाधारण शिक्षित समाज में भी उसका प्रचार करना संस्कृत शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य होना चाहिये। परन्तु दुःख के साथ कहना पड़ता है कि वर्तमान संस्कृत शिक्षा में इस विषय की घोर उपेक्षा की गई है और किसी का भी ध्यान इस आवश्यक विषय की ओर नहीं गया है। फलतः संस्कृत का आचार्य भी अपने शास्त्रों के सदाचार सम्बन्धी विषयों के ज्ञान से वञ्चित रह जाता है और जब वह स्वयं ही इस विषय का ज्ञाता नहीं होता तो दूसरों को इस विषय का प्रामाणिक ज्ञान कैसे करा सकता है? वर्तमान संस्कृत शिक्षा पद्धति की यह एक महती त्रुटि है जिसे दूर करने की नितान्त आवश्यकता है।

संस्कृत तथा संस्कृति के प्रेमियों को यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता होगी कि इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिये कार्यालय द्वारा कुछ दिनों से सदाचार सम्बन्धी समस्त शिक्षाओं का एक वृहत् संकलन तैयार किया जा रहा है जो इस विषय का अप्रकाशितपूर्व एक अनुपम ग्रन्थ होगा। प्रस्तुत पुस्तक उसी का बालोपयोगी लघु संस्करण है जो निदर्शन के रूप में आज प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है, इस पुस्तक से न

केवल संस्कृत के छात्रों को ही अपितु अन्य छात्रों तथा सर्वसाधारण शिक्षित समाज को भी अपनी सदाचार सम्बन्धी शिक्षाओं के जानने में सहायता मिलेगी। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इस पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ जाने के बाद पाठकों की जीवनचर्या पर भी इसका कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य पड़ेगा ही। आज के जीवन में जब कि सदाचार के आदर्श तेजी से लुप्त होते जा रहे हैं और दिन-प्रतिदिन उच्छृङ्खलता बढ़ती जा रही है, समस्त शिक्षा-संस्थाओं में और घर-घर में ऐसी पुस्तकों के प्रचार की अत्यन्त आवश्यकता है।

अन्त में, इस पुस्तक के प्रकाशनार्थ कान्चीकामकोटिपीठ के पूज्यपाद जगद्गुरु श्री शङ्कराचार्य जी महाराज ने जो सहायता प्रदान की है उसके लिये मैं हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ और आशा करता हूँ कि वृद्ध एवं नवीन दोनों ही आचार्यचरण इस संस्था पर सदा कृपादृष्टि रखेंगे और अपने आशीर्वाद, स्नेह और सहयोग से इसे बराबर अनुगृहीत करते रहेंगे।

रथयात्रा, २०२५ वि०
वाराणसी

विनीत—
सम्पादक

विषय-सूची

सदाचार और उसका महत्त्व	१–४
आदर्श आचार-व्यवहार	५–१२
वर्जनीय आचार-व्यवहार	१३–१९
सभ्यता, शिष्टता	२०–३०
घर की सफाई	३१–३२
स्वास्थ्य-रक्षा	३३–३६
वेषभूषा	३७–३९
संभाषण	४०–४१
आमोद-प्रमोद	४२–४३
सभा-सम्मेलन	४३–४५
पारिवारिक कर्तव्य	४५–४८
श्रेष्ठजन-समादर	४९–५०
अतिथि-सत्कार	५१–५२
सबके साथ स्नेह-सहानुभूति	५३–५४
दिनचर्या	५५–६४

———

[illegible]

[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]

बाल-
सदाचार-शिक्षा

१—सदाचार और उसका महत्त्व

सदाचार शब्द का अर्थ

साधवः क्षीणदोषाः स्युः सच्छब्दः साधुवाचकः ।
तेषामाचरणं यत्तु सदाचारः स उच्यते ॥[१]

सत् शब्द का अर्थ है साधु और साधु उन पुरुषों को कहते हैं जो दोषों से रहित हों। ऐसे सत् पुरुषों का अर्थात् साधु पुरुषों का, सज्जनों का, जो आचरण होता है उसे सदाचार कहते हैं।

सदाचार पालन की आवश्यकता

श्रुति-स्मृत्युदितं सम्यग् निबद्धं स्वेषु कर्मसु ।
धर्ममूलं निषेवेत सदाचारमतन्द्रितः ॥[२]

श्रुतियों (वेदों) तथा स्मृतियों (धर्मशास्त्रों) में जो सदाचार के

१—विष्णुपुराण ३, १०, ३.

२—मनुस्मृति अ ४, १५५.

नियम कहे गये हैं उनका मनुष्य के अपने समस्त कर्तव्यों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध हैं तथा वे धर्म के मूलभूत हैं अर्थात् धर्म का महान् प्रासाद सदाचारों की ही मूलभित्ति पर स्थापित किया गया है। अतः आलस्यहीन होकर, सावधानी से, उन समस्त नियमों का सम्यक् प्रकार से पालन करना चाहिये।

सदाचार पालन से लाभ

आचाराल्लभते ह्यायुः आचारादीप्सिताः प्रजाः।
आचाराद्धनमक्षय्यम् आचारो हन्त्यलक्षणम्॥[३]

सदाचार के पालन से मनुष्य दीर्घायु होता है, सदाचार के पालन से मनुष्य को उत्तम सन्तति प्राप्त होती है, सदाचार के पालन से मनुष्य अक्षय धन-सम्पत्ति प्राप्त करता है तथा सदाचार ऐसा गुण है जो मनुष्य के समस्त दोषों और दुर्लक्षणों को नष्ट कर देता है।

आचारः स्वर्गजनन आचारः कीर्तिवर्धनः।
आचारश्च तथाऽयुष्यो धन्यो लोकसुखावहः॥[४]

सदाचार से मनुष्य को स्वर्ग की प्राप्ति होती है, सदाचार मनुष्य का यश बढ़ाता है, सदाचार आयुवर्धक तथा धनवर्धक होता है और सदाचार के पालन से मनुष्य को लोक में सब प्रकार का सुख प्राप्त होता है।

३— ,, ,, १५६.

४—विष्णुधर्मोत्तर पुराण, २७१, १.

सदाचार के उल्लंघन से हानि

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥[५]

जो मनुष्य दुराचारी होता है—सदाचार का पालन नहीं करता—उसकी समाज में सर्वत्र निन्दा होती है। वह सर्वदा दुख भोगता रहता है, कभी निरोग नहीं रहता तथा अल्पायु होता है।

भारतीय जीवन में सदाचार का महत्त्व

यज्ञ-दान-तपांसीह पुरुषस्य न भूतये।
भवन्ति यः सदाचारं समुल्लङ्घ्य प्रवर्तते ॥[६]

जो मनुष्य सदाचार के नियमों का उल्लंघन कर मनमाने ढंग से जीवन व्यतीत करता है वह यदि यज्ञ, दान तथा तप आदि भी करे तो भी उसके ये कर्म उसके लिये कभी कल्याणसाधक नहीं होते।

आचारहीनं न पुनन्ति वेदा
यद्यप्यधीताः सह षड्भिरङ्गैः।
छन्दांस्येनं मृत्युकाले त्यजन्ति
नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाः ॥[७]

सदाचारहीन मनुष्य यदि छहो अङ्गों के साथ समस्त वेदों का

५—मनुस्मृति अ, ४, १५७.

६—पद्मपुराण, स्वर्गखण्ड.

७—वसिष्ठ स्मृति ६, ३.

अध्ययन कर चुका हो तथापि वह पवित्र और पुण्यात्मा नहीं माना जा सकता। उस पुरुष की मृत्यु के समय उसके सारे पढ़े हुये वेदमन्त्र उसे उसी प्रकार छोड़ देते हैं जैसे पंख हो जाने पर पक्षी अपने घोसले को छोड़ देते हैं।

सदाचारियों के ऊपर ही लोकस्थिति निर्भर

ये काम-क्रोध-लोभानां वीतरागा न गोचरे।
सदाचारे स्थितास्तेषाम् अनुभावैर्धृता मही ॥[८]

जो वीतराग पुरुष काम, क्रोध और लोभ आदि दोषों के कभी वशीभूत नहीं होते तथा सदा सदाचार के पवित्र पथ पर चलते हैं उन्हीं के प्रभाव से पृथ्वी टिकी हुई रहती है।

तात्पर्य यह है कि मानवसमाज की स्थिति, विकास और विध्वंस एकमात्र सदाचार एवं दुराचार के ऊपर ही अवलम्बित है। अतः समाज में प्रचलित दुराचारों का निराकरण और सदाचारों का पालन समाज के हित की दृष्टि से परमावश्यक कर्तव्य है।

८—विष्णुपुराण ३, १२, ४२.

२—आदर्श आचार-व्यवहार

[चरक संहिता एवं कौटिलीय अर्थशास्त्र के निम्नलिखित विशेषण आदर्श पुरुषों के लक्षण के रूप में उल्लिखित हैं। उनका यहाँ शिक्षा के रूप में उल्लेख किया गया है। अर्थात् सबको ऐसा ही बनने का प्रयत्न करना चाहिये।]

मङ्गलाचारशीलः[1]।

मङ्गल एवं आनन्दसूचक आचार-व्यवहार से युक्त रहना चाहिये।

सुमुखः[2]।

प्रसन्नवदन रहना चाहिये। रोषपूर्ण या उदासीन मुद्रा में नहीं रहना चाहिये।

निश्चिन्तः[3]।

निश्चिन्त रहना चाहिये। चिन्ताशील स्वभाव का नहीं होना चाहिये।

ह्रीमान्[4]।

निन्दनीय कामों के करने में लज्जाशील होना चाहिये।

धीमान्[5]।

बुद्धिमान् होना चाहिये।

१-३१—चरक संहिता, सूत्रस्थान, अ० ८.

महोत्साहः[१]।

महान् उत्साही होना चाहिये।

दक्षः[७]।

प्रत्येक काम में दक्ष एवं कुशल होना चाहिये।

वश्यात्मा[८]।

जितेन्द्रिय होना चाहिये।

धर्मात्मा[९]।

धर्म में आस्थावान् होना चाहिये।

हेतौ ईर्ष्युः फले नेर्ष्युः[१०]।

किसी की उन्नति को देखकर उसकी उन्नति के लिये ईर्ष्या नही करनी चाहिये प्रत्युत उसके कारणभूत गुणों के लिये ईर्ष्या करनी चाहिये और स्वयं भी वैसा होने का प्रयत्न करना चाहिये।

क्षमावान्[११]।

क्षमाशील होना चाहिये।

धार्मिकः[१२]।

धर्माचरणशील तथा धर्म का रक्षक होना चाहिये।

आस्तिकः[१३]।

आस्तिक होना चाहिये अर्थात् शास्त्र, ईश्वर एवं परलोक में विश्वास रखना चाहिये।

विनय-बुद्धि-विद्याऽभिजन-वयोवृद्ध-
सिद्धाचार्याणाम् उपासिता[१४]।

जो लोग विनय, बुद्धि, विद्या, कुल एवं अवस्था में श्रेष्ठ हों; जो सिद्ध पुरुष हों और जो आचार्य हों उनका उपासक होना चाहिये अर्थात् उनकी सेवा और संगति में रहना चाहिये।

होता[१५]।

यथासमय हवन करते रहना चाहिये।

यष्टा[१६]।

यथासमय यज्ञ-याग करते रहना चाहिये।

दाता[१७]।

यथासमय दान देते रहना चाहिये।

बलीनाम् उपहर्ता[१८]।

यथासमय देवताओं की पूजा- अर्चा करते रहना चाहिये।

अतिथीनाम् पूजकः[१९]।

यथासमय अतिथिजनों का आदर-सत्कार करते रहना चाहिये।

पितृभ्यः पिण्डदः[२०]।

यथासमय पितरों का श्राद्धतर्पण आदि करते रहना चाहिये।

काले हितमितमधुरार्थवादी[२१]।

सामयिक वचन बोलना चाहिये, हितकर वचन बोलना चाहिये, परिमित वचन बोलना चाहिये तथा मधुर एवं कोमल वचन बोलना चाहिये।

सर्वप्राणिषु बन्धुभूतः स्यात्[२२]।

समस्त प्राणियों को अपना भाई-बन्धु समझना चाहिये और वैसा ही सब के साथ व्यवहार रखना चाहिये।

क्रुद्धानाम् अनुनेता[२३] ।

क्रुद्ध पुरुषों को अनुनय-विनय द्वारा मनाना चाहिये ।

भीतानाम् आश्वासयिता[२४] ।

डरे हुये लोगों को आश्वासन देना चाहिये ।

दीनानाम् अभ्युपपत्ता[२५] ।

दीन-दुखियों का सहायक होना चाहिये ।

सत्यसन्धः[२६] ।

सत्यप्रतिज्ञ होना चाहिये ।

सामप्रधानः[२७] ।

साम, दान, दण्ड और भेद आदि उपायों में साम का ही प्रधानतया अवलम्बन करना चाहिये ।

पर-परुषवचन-सहिष्णुः[२८] ।

दूसरों के कठोर वचन को सहने का अभ्यासी होना चाहिये ।

अमर्षघ्नः[२९] ।

अमर्ष नहीं रखना चाहिये ।

शमगुणदर्शी[३०] ।

शान्ति को गुण की दृष्टि से देखना चाहिये ।

रागद्वेषहेतूनां हन्ता[३१] ।

राग और द्वेष के बाहरी एवं भीतरी कारणों को समझना चाहिये और उन्हें दूर करना चाहिये ।

सत्त्वसम्पन्नः[३२] ।

आत्मिक बल से सम्पन्न रहना चाहिये ।

वृद्धदर्शी[३३] ।

वयोवृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध पुरुषों का उपासक होना चाहिये ।

सत्यवाक्[३४] ।

सत्यवादी होना चाहिये ।

अविसंवादकः[३५] ।

वचन एवं आचरण में एकता रखनी चाहिये ।

कृतज्ञः[३६] ।

कृतज्ञ होना चाहिए । किसी के किये हुये उपकार को भूलना नहीं चाहिये ।

अदीर्घसूत्रः[३७] ।

दीर्घसूत्री नहीं होना चाहिये । सब काम यथासंभव शीघ्रता से करना चाहिये ।

स्थूललक्षः[३८] ।

अपना लक्ष्य ऊँचा एवं महान् रखना चाहिये ।

दृढ़बुद्धिः[३९] ।

अपनी बुद्धि और विचार को दृढ़ रखना चाहिये । ढुलमुल नहीं ।

अक्षुद्रपरिषत्कः[४०] ।

३२-४८—कौटिलीय अर्थशास्त्र, अधि० ६, अ० १

महान् पुरुषों की परिषद् में जाना चाहिये और अपने यहाँ भी महान् पुरुषों की ही परिषद् बुलानी चाहिये। क्षुद्र लोगों की नहीं।

वाग्मी[४१]।

उत्तम वक्ता होना चाहिये।

प्रगल्भः[४२]।

बोलने में निर्भीक एवं प्रौढ़ होना चाहिये।

स्मृति-मति-बलवान्[४३]।

स्मरणशील होना चाहिये, मतिमान होना चाहिये और बलवान होना चाहिये।

उदग्रः[४४]।

वीर, पराक्रमी एवं साहसी होना चाहिये।

स्ववग्रहः[४५]।

नमनशील स्वभाव का होना चाहिये। हठी एवं कठोर स्वभाव का नहीं होना चाहिये।

कृतशिल्पः[४६]।

शिल्प और कला में कुशल होना चाहिये।

दीर्घदूरदर्शी[४७]।

दीर्घदर्शी और दूरदर्शी होना चाहिये।

पैशुन्यहीनः[४८]।

पिशुनता नहीं करनी चाहिये।

यद्यदात्मनि चेच्छेत तत्परस्यापि चिन्तयेत्[४९] ।

अपने लिये जिन जिन बातों की इच्छा करनी चाहिये उनकी दूसरों के लिये भी इच्छा करनी चाहिये ।

न तत्परस्य सन्दध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः[५०] ।

जो बात अपने लिये प्रतिकूल मालूम पड़े उसे दूसरे के साथ नहीं करना चाहिये ।

आभाषितश्च मधुरं प्रत्याभाषेत मानवान्[५१] ।

यदि कोई बात करे तो उससे मधुर वचन बोलना चाहिये ।

ईक्षितः प्रतिवीक्षेत मृदु वल्गु च सुष्ठु च[५२] ।

यदि कोई अपनी ओर देखे तो उसकी ओर मृदु मधुर एवं सौजन्य-पूर्ण दृष्टि से देखना चाहिये ।

आपद्युन्मार्गगमने कार्यकालात्ययेषु च ।
अपृष्टोऽपि हितान्वेषी ब्रूयात् कल्याणभाषितम्[५३] ।

यदि किसी पर आपत्ति आ जाय, यदि कोई कुपथ पर चलने लगे तथा किसी का काम करने का समय बीत रहा हो तो बिना पूछे भी हितैषी पुरुष को उसके लिये हितकर बात बता देनी चाहिये ।

४९—महाभारत उ० १८, ७३.
५०— ,, ,, ७२.
५१—महाभारत शान्ति० ६७ ३८.
५२— ,, ,, ,, ३९.
५३—शुक्रनीति २, २२१.

अप्रियं यस्य कुर्वीत भूयस्तस्य प्रियं चरेत्[५४]।

यदि किसी कारणवश किसी का कभी कुछ अप्रिय भी हो जाय तो पुनः उसका प्रिय भी करना चाहिये।

कुर्यात् प्रियमयाचितः।[५५]

विना किसी के द्वारा याचना किये ही सबका प्रिय करना चाहिये।

धर्माणामविरोधेन सर्वेषां प्रियमाचरेत्।[५६]

किसी धर्मविशेष का विरोध न करते हुये सब का प्रिय सम्पादन करना चाहिये।

प्रसादयेन्मधुरया वाचा चाऽप्यथ कर्मणा।
तवास्मीति वदेन्नित्यं परेषां कीर्तयन् गुणान्॥[५७]

मधुर वाणी तथा हितकर कर्म द्वारा सब को प्रसन्न रखना चाहिये तथा दूसरों की प्रशंसा करते हुये "मैं आप का ही हूँ" ऐसा सदा कहना चाहिये।

कृतज्ञेन सदा भाव्यं मित्रकामेन चैव हि।[५८]

सदा कृतज्ञ होना चाहिये तथा सदा नये नये मित्र बनाने की इच्छा रखनी चाहिये।

५४—महाभारत,	शान्तिपर्व अ०	८६,	८
५५— ,,	,,	,,	६
५६— ,,	,,	१२०,	२५
५७— ,,	,,	१२३,	३३
५८— ,,	,,	१७३,	२२

३—वर्जनीय आचार-व्यवहार

न अनृतं ब्रूयात्[1]।

असत्य नहीं बोलना चाहिये।

न अन्यस्वम् आददीत[2]।

दूसरे का धन नहीं लेना चाहिये।

न अन्यस्त्रियम् अभिलेषत् न अन्यश्रियम्[3]।

दूसरे की स्त्री और दूसरे की श्री (धन-वैभव) की, लालच नहीं करनी चाहिये।

न वैरं रोचयेत्[4]।

वैर-विरोध करना नहीं पसन्द करना चाहिये।

न कुर्यात् पापम्[5]।

पापकर्म—शारीरिक, मानसिक या वाचिक-नहीं करना चाहिये।

न पापेऽपि पापी स्यात्[6]।

पापी के साथ भी पापाचरण नहीं करना चाहिये।

न अन्यदोषान् ब्रूयात्[7]।

दूसरों के दोषों को नहीं कहना चाहिये।

न अन्यरहस्यम् आगमयेत्[8]।

दूसरों की गुप्त बातों को जानने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये।

१-३३—चरक संहिता, सूत्रस्थान अ० ८.

न भयम् उत्पादयेत्[९]।

किसी को भयभीत नहीं करना चाहिये।

कलिं न आरभेत[१०]।

किसी के साथ झगड़ा नहीं करना चाहिये।

न सतो न गुरुन् परिवदेत्[११]।

सज्जनों एवं गुरुजनों की निन्दा नहीं करनी चाहिये।

न अतिसमयं जह्यात्[१२]।

आपसी सन्धियों और समझौतों का परित्याग नहीं करना चाहिये।

न नियमं भिन्द्यात्[१३]।

नियमों को नहीं तोड़ना चाहिये।

न मद्य-द्यूत-वेश्याप्रसङ्गरुचिः स्यात्[१४]।

मद्यपान, द्यूतक्रीडा तथा वेश्यागमन नहीं करना चाहिये।

न कञ्चिद् अवजानीयात्[१५]।

किसी का अपमान नहीं करना चाहिये।

न अहम्मानी स्यात्[१६]।

किसी बात का अहंकार नहीं रखना चाहिए।

न अदक्षः[१७]।

गवाँर, बुद्धिहीन और अकुशल नहीं होना चाहिए।

न अदक्षिणः[१८]।

अनुदार नहीं होना चाहिये।

न असूयकः[१९]।

असूया नहीं रखनी चाहिये।

न अधीरः न अत्युच्छ्रितसत्त्वः स्यात्[२०] ।

अधीर और उद्धत नहीं होना चाहिये ।

न अभृतभृत्यः[२१] ।

भरण-पोषण के योग्य व्यक्तियों के भरण-पोषण से विरत नहीं होना चाहिये ।

न एकः सुखी[२२] ।

अकेले सुखसाधनों का उपभोग नहीं करना चाहिये ।

न दुःखशीलाचारोपचारः[२३] ।

दुःखमय शील एवं आचार-व्यवहार नहीं रखना चाहिये ।

न सर्वविश्रम्भी[२४] ।

सब के ऊपर विश्वास नहीं करना चाहिये ।

न सर्वाभिशंकी[२५] ।

सबके ऊपर आशङ्का भी नहीं करनी चाहिये ।

न सर्वकालविचारी[२६] ।

सदा सोच-विचार में नहीं पड़े रहना चाहिये ।

न इन्द्रियवशगः स्यात्[२७] ।

इन्द्रियों के वश में ही नहीं रहना चाहिये ।

न चञ्चलं मनः अनुभ्रामयेत्[२८] ।

मन को चंचल नहीं बनाना चाहिये और उसे नाना विषयों में नहीं घुमाना चाहिये ।

न क्रोधहर्षौ अनुविदध्यात्[२९] ।

अधिक क्रोध और अधिक हर्ष नहीं करना चाहिये। इनसे अभिभूत नहीं होना चाहिये।

न शोकम् अनुवसेत्[३०]।

बहुत देर तक शोक में नहीं पड़े रहना चाहिये।

न सिद्धौ उत्सेकं गच्छेत् न असिद्धौ दैन्यम्[३१]।

काम के सिद्ध हो जाने पर न अत्यधिक हर्ष करना चाहिये और न काम के सिद्ध न होने पर दैन्य प्रकट करना चाहिये।

न वीर्यं जह्यात्[३२]।

बल एवं साहस का परित्याग नहीं करना चाहिये।

न अपवादम् अनुस्मरेत्[३३]

अपवाद का अधिक दिनों तक स्मरण नहीं रखना चाहिये।

सत्यात् न प्रमदितव्यम्[३४]।

सत्य बोलने में प्रमाद नहीं करना चाहिये।

धर्मात् न प्रमदितव्यम्[३५]।

धर्माचरण में प्रमाद नहीं करना चाहिये।

कुशलात् न प्रमदितव्यम्[३६]।

शुभ कार्यों में प्रमाद नहीं करना चाहिये।

भूत्यै न प्रमदितव्यम्[३७]।

उन्नति एवं ऐश्वर्यसाधक कामों में प्रमाद नहीं करना चाहिये।

स्वाध्याय-प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्[३८]।

३४—३९—तैत्तिरीयोपनिषद्, शिक्षावल्ली, अनु० १०.

स्वाध्याय एवं प्रवचन में अर्थात् ज्ञानार्जन एवं विद्यादान में प्रमाद नहीं करना चाहिये।

देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्।[३९]

देवकार्य एवं पितृकार्य में प्रमाद नहीं करना चाहिये।

नारुन्तुदः स्याद् आर्तोऽपि, न परद्रोहकर्मधीः।
ययाऽस्योद्विजते वाचा नाऽलोक्यां तामुदीरयेत्॥[४०]

आर्त अवस्था में भी किसी से मर्मभेदी वचन नहीं बोलना चाहिये, आचरण या बुद्धि किसी से भी दूसरों का द्रोह नहीं करना चाहिये तथा जिस वाणी को सुनकर लोग उद्विग्न हो उठें, ऐसी लोकविरोधिनी वाणी नहीं बोलनी चाहिये।

इन्द्रियार्थेषु सर्वेषु न प्रसज्येत कामतः।[४१]

किसी भी इन्द्रिय के विषय में जानबूझ कर विशेष आसक्त नहीं होना चाहिये।

नात्मानमवमन्येत पूर्वाभिरसमृद्धिभिः।
आमृत्योः श्रियमन्विच्छेन्नैनां मन्येत दुर्लभाम्॥[४२]

अपनी पूर्व अवस्था की दीनता एवं दरिद्रता का स्मरण कर अपने को अपमानित एवं हीन नहीं समझना चाहिये। मृत्युपर्यन्त सम्पत्ति कमाने की इच्छा करनी चाहिये। उसे कभी दुर्लभ नहीं समझना चाहिये।

४०—मनुस्मृति अ० २, १६१.

४१— ,, ,, ४, १६.

४२— ,, ,, ४, १३७.

भद्रं भद्रमिति ब्रूयात् भद्रमित्येव वा वदेत्।
शुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात् केनचित् सह ॥४३

हमेशा सबकी भलाई और लोकमङ्गल की ही बात करनी चाहिये। किसी के साथ निरर्थक वैर-विरोध एवं लड़ाई-झगड़ा नहीं करना चाहिये।

न सीदन्नपि धर्मेण मनोऽधर्मं निवेशयेत्।४४

धर्माचरण से कष्ट पाने पर भी मन को अधर्म की ओर प्रेरित नहीं करना चाहिये।

न धर्मस्यापदेशेन पापं कृत्वा व्रतं चरेत्।४५

कोई पाप करके, उसके निवारण के लिये धर्म के व्याज से व्रत आदि नहीं करना चाहिये। अर्थात् धर्म का बहाना बनाकर पापनिवृत्ति के लिये व्रतानुष्ठान आदि नहीं करना चाहिये।

यत् परेषां हितं न स्यादात्मनः कर्म पौरुषम्।
अपत्रपेत वा येन न तत् कुर्यात् कदाचन ॥४६

जिस काम से न दूसरों का हित हो, न अपना हित हो तथा जिस काम से समाज में लज्जित होना पड़े वह कभी नहीं करना चाहिये।

न बलस्थोऽहमस्मीति नृशंसानि समाचरेत्।४७

४३—मनुस्मृति अ० ४, १३९.

४४— ,, ,, ४, १७१.

४५— ,, ,, ४, १७५.

४६—महाभारत, शान्तिपर्व अ० १२४, ६७.

४७—महाभारत, शान्तिपर्व अ० १३३, १९.

मैं ऊँचे अधिकार पर हूँ, मेरा कोई क्या कर सकता है, ऐसा समझ कर अन्याय और अत्याचार नहीं करना चाहिये।

सर्वथा स्त्री न हन्तव्या सर्वसत्वेषु केनचित्।[४८]

किसी भी स्त्री को कभी नहीं मारना चाहिये।

नापध्यायेत् न स्पृहयेत् नाऽवद्यं चिन्तयेदसत्।[४९]

किसी का भी अपकार करने की बात नहीं सोचनी चाहिये, अनुचित लालच नहीं करनी चाहिये तथा असम्बद्ध एवं असत् विषयों का चिन्तन नहीं करना चाहिये।

परेषां यदसूयेत न तत् कुर्यात् स्वयं नरः[५०]।

दूसरों की जो बातें अप्रिय और अनुचित लगें उन्हें स्वयं भी नहीं करना चाहिये।

आक्रोशन-विमानाभ्यां नावुधान् बोधयेद् बुधः।[५१]

विद्वान् को चाहिये कि वह बुद्धिहीन लोगों को अपशब्दों के प्रयोग तथा अपमान द्वारा न समझाये-बुझाये।

मित्रद्रोहो न कर्तव्यः पुरुषेण विशेषतः।[५२]

मनुष्य को चाहिये कि वह कभी भी मित्रद्रोह न करे।

४८—महाभारत शान्तिपर्व अ० १३५, ५४.
४९— ,, ,, ,, २१४, ६.
५०— ,, ,, ,, २६०, २४.
५१— ,, ,, ,, २६६, २६.
५२— ,, ,, ,, १७३, २२.

४—सभ्यता, शिष्टता

न उच्चैः हसेत्।[1]

बहुत जोर से नहीं हँसना चाहिये।

न अनावृतमुखो जृम्भां क्षवथुं हास्यं वा प्रवर्तयेत्।[2]

जहां और भी कोई बैठा हो वहाँ बिना मुँह ढके जभाँई नहीं लेनी चाहिये, छींकना नहीं चाहिये तथा जोर से हँसना भी नहीं चाहिये।

न नासिकां कुण्डीयात्।[3]

अगुँली से नाक नहीं निखोरते रहना चाहिये।

न विगुणमङ्गैश्चेष्टेत।[4]

हाथ-पैर आदि किसी भी अङ्ग से व्यर्थ और असभ्यतापूर्ण चेष्टायें नहीं करनी चाहिये।

न जनवति नाऽन्नकाले न जप-होमाऽध्ययन-मङ्गलक्रियासु श्लेष्म-सिंघाणकं मुञ्चेत्।[5]

जहाँ बहुत लोग हों, जहाँ भोजन हो रहा हो तथा जहाँ जप, होम, अध्ययन तथा और कोई शुभ कर्म हो रहा हो वहाँ थूक-खँखार तथा नाक का मैल आदि नहीं फेंकना चाहिये।

न गुह्यं विवृणुयात्।[6]

१–६—चरकसंहिता, सूत्रस्थान, अ० ८.

अपने गुप्त अङ्गों को खुला नहीं रखना चाहिये। बैठते, उठते, सोते तथा कपड़ा पहनते समय इस बात पर बराबर ध्यान रखना चाहिये।

न क्षिप्तपादजंघश्च प्राङ्मस्तिष्ठेत् कदाचन।[७]

पैर तथा जंघा फैलाकर नहीं बैठना चाहिये।

न स्नायीत नरो नग्नो न शयीत कदाचन।[८]

नग्न होकर स्नान तथा शयन नहीं करना चाहिये।

न कुर्याद्दन्तसङ्घर्षं न कुर्याच्चलनासिकाम्।[९]

दांतों को नहीं किरकिराना चाहिये तथा नाक को नहीं चमकाना चाहिये।

नास्फोटयेन्न च क्ष्वेडेन्न च रक्तो विरावयेत्।[१०]

बाहों पर ताल नहीं ठोकना चाहिए, लोगों से छेड़छाड़ नहीं करना चाहिए तथा मस्ती में हमेशा गुनगुनाते नहीं रहना चाहिये।

न छिन्द्यान्नखलोमानि।[११]

नहँ से नँह नहीं काटना चाहिये तथा चुटकी से रोएँ नहीं उखाड़ना चाहिये।

---

७ - मार्कण्डेयपुराण, अ० ३४, ४४.

८— ,, ,, ३४, ६४.

९—भविष्यपुराण, उत्तरार्ध, २०५.

१०—मनुस्मृति अ० ४, ६४.

११— ,, ,, ४, ६६.

दन्तैर्नोत्पाटयेन्नखान्।[१२]

दातों से नहँ नहीं काटना चाहिये।

अनातुरः स्वानि खानि न स्पृशेदनिमित्ततः।[१३]

विना किसी रोग या विशेष आवश्यकता के अपने गुप्त अङ्गों को नहीं छूते रहना चाहिये।

अस्थाने शयनं स्थानं स्मयनं यानं
गानं स्मरणमिति च वर्जयेत्। [१४]

सोना, ठहरना, मुसकराना, जाना, गाना तथा किसी बात का स्मरण करना या कराना यह सब काम जहाँ उचित न हो वहाँ नहीं करना चाहिये। इन छोटी छोटी बातों के भी औचित्य पर ध्यान न देने से उसके बहुत बुरे परिणाम होते हैं।

न शिश्नोदर-पाणि-पाद-वाक्-चक्षुश्चापलानि कुर्यात्।[१५]

मूत्रेन्द्रिय, उदर, हाथ, पैर, वाणी और नेत्र इन इन्द्रियों को चंचल और असंयत नहीं बनाना चाहिये। इन इन्द्रियों पर खूब संयम रखना चाहिए तथा उचित रूप से ही इनका उपयोग करना चाहिये।

सोपानत्कश्च आसनाऽशन- शयनाभिवादन-
नमस्कारान् वर्जयेत्[१६]।

११-१६—आपस्तम्ब धर्मसूत्र, प्रश्न १.

१२—मनुस्मृति अ० ४, ६९.

१३— „ „ ४, १४४.

१४, १५, १६—मैत्रायणी मानवगृह्यसूत्र १ २ १९.

आसन पर बैठना, भोजन करना, सोना, गुरुजनों का अभिवादन तथा पूज्य जनों को नमस्कार करना यह सब काम जूता पहने हुए नहीं करना चाहिये।

संलापं नैव शृणुयाद् गुप्तः कस्यापि सर्वदा।[१७]

किसी की बातचीत को छिपकर नहीं सुनना चाहिये।

मार्गं निरुध्य न स्थेयम्। [१८]

रास्ता रोककर न खड़ा होना चाहिये और न बैठना चाहिये।

परवेश्मगतः तत्स्त्रीवीक्षणं नैव कार्य्येत्।[१९]

दूसरे के घर जाने पर उस घर की स्त्रियों की ओर दृष्टिपात नहीं करना चाहिये।

परद्रव्यं क्षुद्रमपि नादत्तं संहरेदणु।[२०]

दूसरे की कोई वस्तु बहुत छोटी और थोड़ी भी क्यों न हो, उसे बिना माँगे या पूछे नहीं लेना चाहिये।

न पथि मूत्र-पुरीषं शिलां च समुत्सृजेत्।[२१]

रास्ते पर पेशाब, पैखाना तथा कंकड़-पत्थर नहीं फेंकना चाहिये।

१७—शुक्रनीति अ० ३, १३६.

१८— ,, ,, १८७.

१९— ,, ,,

२०— ,, ,, ६५.

२१—हारीत स्मृति.

न संहताभ्यां शिर उदरं च कण्डूयेत् ।[२२]

एक साथ दोनों हाथों से शिर अथवा पेट नहीं खुजलाना चाहिये।

उपगम्य गुरून् सर्वान् विप्रांश्चैवाभिवादयेत् ।[२३]

अपने से सभी श्रेष्ठ पुरुषों तथ विप्रों के पास जाकर प्रणाम करना चाहिये। दूर से प्रणाम करना ठीक नहीं होता।

सर्वत्र तु प्रत्युत्थायाऽभिवादनम् ।[२४]

किसी भी श्रेष्ठ पुरुष को प्रणाम करना हो तो खड़े होकर प्रणाम करना चाहिये, बैठे-बैठे नहीं।

कुशलमवरवयसं वयस्यं वा पृच्छेत् ।[२५]

जो व्यक्ति अवस्था में अपने से कनिष्ठ अथवा अपने समान हो, उससे मिलने पर या कहीं मुलाकात होने पर कुशल-मङ्गल पूछना चाहिये।

पूज्यैः सह नाधिरुह्य वदेत् ।[२६]

पूज्य जनों के साथ बढ़-चढ़ कर बातें नहीं करनी चाहिये।

न अश्लीलं कीर्तयेत् ।[२७]

अश्लील बातें तथा अश्लील शब्दों का उच्चारण नहीं करना चाहिये।

२२—विष्णुस्मृति अ० ७१.

२३—स्मृतिसंग्रह

२४—आपस्तम्ब धर्मसूत्र प्र०.

२५—आपस्तम्ब धर्मसूत्र प्र० १ प० ४, क० १४, २३.

२६—नीतिवाक्यामृत १७, २७.

२७—विष्णुस्मृति, अ० ७१.

न करं मस्तके दद्यात् मस्तकं न करे तथा ।[२८]

मस्तक पर हाथ या हाथ पर मस्तक रखकर नहीं बैठना चाहिये ।

न जानुनोः शिरो धार्यम् ।[२९]

ठेहुनों पर भी मस्तक रखकर नहीं बैठना चाहिये । यह सब शोक और विषाद का सूचक होता है ।

पर-शय्यासनोद्यान-गृहयानानि वर्जयेत् । अदत्तानि ।[३०]

दूसरों की शय्या, आसन, उद्यान, गृह तथा वाहन का बिना उनकी सम्मति लिये उपयोग नहीं करना चाहिये ।

आगन्तुकैः असहनैश्च सह नर्म न कुर्यात् ।[३१]

नवीन आगन्तुक लोगों के साथ तथा जो लोग हँसी-परिहास करना पसन्द न करते हों उनके साथ हँसी-परिहास नहीं करना चाहिये ।

रति-मन्त्राहारकालेषु न कमपि उपसेवेत ।[३२]

जहाँ कोई व्यक्ति भोगविलास की मुद्रा में हो, जहाँ कोई मन्त्रणा होती हो तथा जहाँ कोई भोजन कर रहा हो वहाँ नहीं जाना चाहिये ।

कुर्यात् विहारमाहारं निहारं विजने सदा ।[३३]

२८—वृद्धपराशरस्मृति, ३।६, २७६.

२९— ,, ,, ,,

३०—याज्ञवल्क्य स्मृति, अ० १, १६०.

३१—नीतिवाक्यामृत १७,५६.

३२— ,, ३२,४६.

३३—शुक्रनीति० अ० ३, १८.

विहार (स्त्रीप्रसंग) आहार (भोजन) तथा निर्हारि (शौच) सदा एकान्त में करना चाहिये।

नित्यं याचनको न स्यात्।[३४]

हमेशा माँगते रहने का अभ्यास नहीं रखना चाहिये।

न मध्याद् गमनं भाषाशालिनोः स्थितयोरपि।[३५]

जहाँ दो व्यक्ति बात कर रहे हों या पास-पास में खड़े हों वहाँ उनके बीच से नहीं जाना चाहिये।

न मध्ये पूज्ययोर्यायात्।[३६]

दो पूज्य व्यक्तियों के बीच से नहीं जाना चाहिये।

अनुज्ञाप्य वा अतिक्रामेत्।[३७]

जब कभी दो व्यक्तियों के बीच से जाना आवश्यक हो तो उनसे आज्ञा लेकर जाना चाहिए।

अद्वारेण च नातीयाद् ग्रामं वा वेश्म वाऽवृतम्।[३८]

किसी भी गांव अथवा बन्द मकान में अनुचित मार्ग से नहीं जाना चाहिये।

३४—कूर्मपुराण उपरिभाग, अ० १६.

३५—शुक्रनीति अ० ३,४६.

३६—अग्निपुराण अ० १५५, २१.

३७—आपस्तम्ब धर्मसूत्र प्र० २, प० ५, क० १२, ८.

३८—मनुस्मृति अ० ४, ७५.

पराधिष्ठानमनुज्ञातः प्रविशेत्।[३९]

दूसरे के स्थान या मकान में वहाँ के किसी व्यक्ति से पूछ कर या सम्मति लेकर प्रवेश करना चाहिये।

परगृहमकारणतो न प्रविशेत्।[४०]

विना किसी प्रयोजन के दूसरे के घर में या संस्थान में प्रवेश नहीं करना चाहिये।

न वार्यमाणः प्रविशेत्।[४१]

जिस स्थान पर जाने की रोक हो या जहाँ जाने से कोई रोक रहा हो, वहाँ नहीं जाना चाहिये।

अनायुक्तो मन्त्रकाले न तिष्ठेत्।[४२]

यदि कहीं लोग मन्त्रणा करते हों तो वहाँ विना कहे नहीं रुकना चाहिये।

न नग्नामीक्षते नारीं न नग्नान् पुरुषांस्तथा।[४३]

नग्न स्त्री-पुरुषों की ओर दृष्टिपात नहीं करना चाहिये।

न कञ्चन मेहमानम्।[४४]

३९—स्मृतिचन्द्रिका.

४०—चाणक्यसूत्राणि.

४१—अष्टांग संग्रह अ० ३.

४३—महाभारत अनु० अ० १६२, ४७.

४४—विष्णुस्मृति अ० ७१, २६.

पेशाव और पैखाना होते हुए स्त्री-पुरुषों की ओर दृष्टि नहीं डालनी चाहिये।

न तीर्थं स्त्र्याकुले स्नायात्।[४५]

नदी या तालाब के जिस घाट पर स्त्रियाँ नहाती हों वहाँ पुरुष को स्नान नहीं करना चाहिये।

वृद्धान्नाभिभवेज्जातु न चैतान् प्रेषयेदपि।[४६]

नासीनः स्यात् स्थितेषु···।

अपने से बड़े और बूढ़े लोगों को किसी बात में दबाना नहीं चाहिये और न उन्हें किसी काम के लिये आज्ञा देकर भेजना चाहिये।

जब बड़े लोग खड़े हों तो स्वयं बैठे नहीं रहना चाहिये, खड़ा हो जाना चाहिये।

स्वावासे भोजने चैव न त्यजेत् सहयायिनम्।[४७]

यात्रा में जहाँ निवास करना हो और भोजन करना हो वहाँ अपने साथी को नहीं छोड़ना चाहिये। अर्थात् अकेले अपने लिये प्रबन्ध नहीं करना चाहिये।

करिष्यामीति ते कार्यं न कुर्यात् कार्यलम्बनम्।[४८]

४५—वृद्धपाराशरस्मृति अ० २, १०५.

४६—महाभारत अनु० अ० १६२, ४६.

४७ – देवलस्मृति.

४८—शुक्रनीति अ० २,२६.

"तुम्हारा काम कर दूँगा" ऐसा किसी को वचन देकर उसके काम में विलम्ब नहीं करना चाहिये।

न दर्शयेत् स्वाधिकारगौरवं तु कदाचन।[४६]

किसी अधिकारी या उच्च पदस्थ व्यक्ति को अपने अधिकार का अभिमानपूर्ण प्रदर्शन नहीं करना चाहिये। "मैं ऐसे पद पर हूँ, मैं यह कर डालूँगा, मैं ऐसा कर सकता हूँ" इत्यादि बातें नहीं कहनी चाहिये।

न न्यूनं लक्षयेत् कस्य पूरयीत स्वशक्तितः।[५०]

किसी की न्यूनता या त्रुटि को केवल बताना नहीं चाहिये प्रत्युत उसे अपनी शक्ति के अनुसार पूरा करना चाहिये।

साशां दीर्घं न रक्षयेत्।[५१]

किसी को आशा देकर उसे बहुत दिनों तक लटकाये नहीं रहना चाहिये।

अवस्कर-स्थल-श्वभ्र-भ्रम-स्यन्दनिकादिभिः।
चतुष्पथ-सुरस्थान-राजमार्गान् न रोधयेत्।[५२]

कूड़ा-करकट रखने का स्थान बना कर, गड्ढा खोद कर तथा छत पर से चूने वाली मोरी बना कर चौराहा, देवस्थान तथा राजमार्ग पर आने-जाने का रास्ता नहीं रोकना चाहिये।

४६—शुक्रनीति अ० २, २४३.

५०—शुक्रनीति अ० २, २२८.

५१—शुक्रनीति अ० २, २३०.

५२—नारदस्मृति.

पन्था देयो ब्राह्मणाय गवे राज्ञे ह्यचक्षुषे।
वृद्धाय भारतप्ताय गर्भिण्यै दुर्बलाय च ॥[५३]

यदि किसी सङ्कीर्ण मार्ग से विद्वान् ब्राह्मण, गौ, राजा, अन्धा, बूढ़ा, भार से पीड़ित, गर्भिणी स्त्री तथा दुर्बल व्यक्ति आता-जाता हो तो स्वयं हट कर उन्हें मार्ग दे देना चाहिये।

नैको मिष्टमश्नीयात्।[५४]

बहुत लोगों में अकेले कोई मीठा पदार्थ नहीं खाना चाहिये।

खादन्न गच्छेदध्वानम्।[५५]

खाते हुए मार्ग पर नहीं चलना चाहिये।

मूत्रं नोत्तिष्ठता कार्यम्।[५६]

खड़े होकर मूत्रोत्सर्ग नहीं करना चाहिये।

न केनचिद् याचितव्यः कश्चित् किञ्चिदनापदि।[५७]

विना आपत्काल या विशेष आवश्यकता के किसी से कुछ नहीं माँगना चाहिये।

स्थानानि शङ्कितानां च नित्यमेव विसर्जयेत्।[५८]

५३—बौधायन धर्मसूत्र प्र० २ अ० ३, ५७.

५४—स्मृतिसंग्रह.

५५—शुक्रनीति अ० ३, १३८.

५६—महाभारत अनु० १०४, ६१.

५७— ,, शान्ति० ८८, १६.

५८— ,, ,, १०३, ३१.

जो लोग चरित्र के विषय में सन्देह की दृष्टि से देखे जाते हों उनके स्थान पर कभी नही जाना चाहिये।

सह स्त्रियाऽथ शयनं सह भोज्यं च वर्जयेत्।[५६]

स्त्री के साथ शयन और भोजन नहीं करना चाहिये।

५—घर की सफाई

वेश्म च शुचि, सुसंमृष्टस्थानं, विरचितविविधकुसुमं, श्लक्ष्णभूमितलं, हृद्यदर्शनम्, त्रिपवणाचरित बलिकर्म, पूजितदेवतायतनं कुर्यात्।[१]

घर को साफ-सुथरा एवं पवित्र बना कर रखना चाहिये।

घर के प्रत्येक स्थान को झाड़-बहार कर साफ रखना चाहिये।

घर की दीवालों पर विविध रंगों से नाना प्रकार के फूल-पत्ती बनाने चाहिये, अथवा गमलों में नाना प्रकार के फूल सजा कर रखना चाहिये।

फर्श को खूब चिकना बना कर रखना चाहिये।

घर को खूब दर्शनीय बना कर रखना चाहिये।

५६—महाभारत, शान्तिपर्व १६३, २४.

१—वात्स्यायन कामसूत्र अधि० ४ अ० १.

तीनों सन्ध्या अर्थात् प्रातः मध्याह्न एवं सायंकाल वलिकर्म (जीव जन्तुओं को भोजन दान) किया रहना चाहिये, तथा

घर में जो देवमन्दिर हो या जिस घर में या स्थान में देवपूजा होती हो उसे धो-धाकर पवित्र रखना चाहिये और वहाँ नियमित पूजा-अर्च्चा होती रहनी चाहिये।

[वात्स्यायन कामसूत्र की यह शिक्षा स्त्रियों के कर्तव्य के रूप में उल्लिखित है परन्तु यह घर में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिये ध्यान देने योग्य है।]

दूरादावसथान्मूत्रं पुरीषं च समुत्सृजेत्।[२]

मूत्र तथा पुरीषोत्सर्ग निवास स्थान से दूर जाकर करना चाहिये या फेंकना चाहिये।

पादावनेजनोच्छिष्टे प्रक्षिपेन्न गृहाङ्गणे।[३]

हाथ-पैर धोने का पानी तथा जूठी चीजें और छिलके आदि घर के भीतर नहीं फेंकना चाहिये।

२-३—विष्णु पुराण अं० ३, अ० ११, ६.

६—स्वास्थ्य-रक्षा

सर्वत एवात्मानं गोपायीत ।[1]

सब प्रकार से अपनी रक्षा करनी चाहिये ।

प्रज्ञया मानसं दुःखं हन्यात् शारीरमौषधैः ।[2]

मानसिक दुःखों को बुद्धि-विवेक द्वारा तथा शारीरिक दुःखों को औषधियों द्वारा दूर करना चाहिये ।

स्वशक्ति ज्ञात्वा कार्यमारभेत ।[3]

अपनी शक्ति का अनुमान लगा कर उसके अनुसार ही किसी कार्य का आरंभ करना चाहिये ।

प्रकृतिमभीक्ष्णं स्मरेत् ।[4]

अपनी प्रकृति का बराबर ध्यान रखना चाहिये । कोई काम प्रकृति-विरुद्ध नहीं करना चाहिये ।

न अतिसाहसमाचरेत् ।[5]

अति मात्रा में साहस नहीं करना चाहिये । अपनी प्रकृति और शक्ति के अनुरूप ही साहस करना चाहिये ।

न बुद्धीन्द्रियाणामतिभारमादध्यात् ।[6]

१—गौतम धर्मसूत्र ६, ३४.

२—महाभारत, शान्तिपर्व, अ० २०५, ३०.

३–११—चरक संहिता, सूत्रस्थान, अ० ८

ज्ञानेंद्रियों पर बहुत अधिक भार नहीं डालना चाहिये। क्योंकि ऐसा करने से उनकी शक्ति क्षीण हो जाती है।

न साहसातिस्वप्न-प्रजागर-स्नान-पानाऽशनान्यासेवेत।[७]

अति साहस, अति शयन, अति जागरण, अति स्नान, अति पान और अति भोजन नहीं करना चाहिये।

पुरोवाताऽतपाऽवश्यायाऽतिप्रवातान् जह्यात्।[८]

आगे से आने वाली हवा, धूप, सर्दी तथा बहुत तेज बहने वाली हवा (अन्धड़) आदि से बचना चाहिये।

न गिरिविषममस्तकेषु अनुचरेत्।[९]

पर्वत की ऊँची-नीची चोटियों पर नही घूमना चाहिये।

न कूलच्छायामुपासीत।[१०]

नदियों तथा पर्वतों के तट की छाया में नहीं बैठना चाहिये। क्योंकि टूटे-फूटे तथा पुराने तटों के गिरने की आशंका रहती है।

न असुनिभृतः अग्निमुपासीत।[११]

अच्छी तरह सावधान हुए बिना अग्निसेवन नहीं करना चाहिये।

खट्वायां च न उपदध्यात्।[१२]

आग को खाट पर नहीं रखना चाहिये।

न वेगान् धारयेत्।[१३]

भूख-प्यास, पेशाब-पैखाना तथा छींक-जँभाई आदि के वेग को नहीं रोकना चाहिये।

१२—आपस्तम्ब धर्मसूत्र.

१३-१४—चरकसंहिता, सूत्रस्थान अ० ७, २, ३५.

व्यायाम-हास्य-भाष्याऽध्व-ग्राम्यधर्म-प्रजागरान् ।
नोचितानपि सेवेत बुद्धिमानतिमात्रया ॥[१४]

व्यायाम, हास्य, भाषण, गमनागमन, स्त्रीप्रसंग तथा जागरण इन कामों का उचित होने पर भी अधिक मात्रा में सेवन नहीं करना चाहिये।

न वेगितोऽन्यकार्यः स्यात् ।[१५]

पेशाव तथा पैखाने का वेग होने पर अन्य कार्य नहीं करना चाहिये। पहले उससे ही निवृत्त हो लेना चाहिये।

शकटात् पञ्चहस्तं तु दशहस्तं तु वाजिनः ।
दूरतः शतहस्तं च तिष्ठेन्नागाद् वृषाद् दश ॥[१६]

गाड़ी से पाँच हाथ, घोड़े से दश हाथ, हाथी से सौ हाथ तथा बैल से दश हाथ दूर रहना चाहिये।

न शत्रुणा, नाऽविदितैर्नैको वाऽधार्मिकैः सह ।[१७]

शत्रु के साथ, अज्ञात लोगों के साथ तथा दुष्ट लोगों के साथ अकेले यात्रा नहीं करनी चाहिये।

मूर्ध-श्रोत्र-घ्राण-पाद-तैलनित्यः ।[१८]

प्रतिदिन शिर में तेल लगाना चाहिये, कानों में तेल डालना चाहिये, नाक से तेल सूँघना और सुरकना चाहिये तथा पैर के तलवे में तेल मलना चाहिये।

१५—चरकसंहिता, सूत्रस्थान अ० ४, २२.

१६—शुक्रनीति अ० ३.

१७—अष्टांगसंग्रह.

१८–२०—चरकसंहिता सूत्रस्थान अ० ८.

छत्री दण्डी मौनी सोपानत्को युगमात्रदृक् विचरेत् ।[१९]

वर्षा और धूप में छत्ता लगा कर चलना चाहिये।

रात में तथा भयावह स्थानों में दण्ड लेकर चलना चाहिये। चुपचाप चलना चाहिये। कुछ बोलते हुए नहीं।

जूता, चप्पल आदि पहन कर कहीं आना-जाना चाहिये।

मार्ग पर सीधे चार हाथ आगे की ओर दृष्टि रखते हुए चलना चाहिये।

नाऽनृजुः क्षुयात्, नाद्यात्, न शयीत ।[२०]

सीधे शरीर से छींकना चाहिये, सीधे शरीर से भोजन करना चाहिये तथा सीधे शरीर से शयन करना चाहिये। शरीर को टेढ़ा-मेढ़ा बना कर यह सब काम नहीं करना चाहिये।

नोर्ध्वं न तिर्यग् दूरं वा न पश्यन् पर्यटेद् बुधः ।[२१]

ऊपर ताकते हुए, अगल-बगल ताकते हुए तथा दूरी पर दृष्टि रखते हुए नहीं चलना चाहिये। सामने और समीप में दृष्टि रखते हुए चलना चाहिये।

दृष्टिपूतं न्यसेत् पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।[२२]

आखों से देख कर जमीन पर पैर रखना चाहिये तथा वस्त्र से छान कर पानी पीना चाहिये।

२१—नीतिसंग्रह.

२२—मनुस्मृति अ० ६, ४६.

यथा शरीरं न ग्लायेत्, नेयान्मृत्युवशं यथा।
तथा कर्मसु वर्तेत समर्थो धर्ममाचरेत्॥[२३]

मनुष्य को इस प्रकार काम करना चाहिये जिससे उसके शरीर को कोई कष्ट न पहुंचे तथा उसकी मृत्यु न हो जाय। शरीर को स्वस्थ और शक्तियुक्त रखते हुए कोई धर्मकार्य करना चाहिये।

७—वेषभूषा

साधुवेशः।[१]

सज्जनों के जैसा वेष धारण करना चाहिये।

नित्यम् अनुपहतवासाः सुमनाः सुगन्धिः स्यात्।[२]

सदा स्वच्छ वस्त्र धारण करना चाहिये, मन को सदा प्रसन्न रखना चाहिये तथा शरीर को सुगन्धित अर्थात् दुर्गन्ध से रहित रखना चाहिये।

उद्धतवेषधरो न स्यात्।[३]

उद्धत और उद्दण्ड जैसा वेष नहीं धारण करना चाहिये।

२३—महाभारत शान्तिपर्व, अ० २६५, १४

१-२—चरकसंहिता सूत्र० अ० ८.

३—चाणक्यसूत्राणि १, ६४.

न चामङ्गल्यवेषः स्यात् ।[४]

अमङ्गलसूचक वेष नहीं धारण करना चाहिये ।

न जीर्णमलद्वासा भवेच्च विभवे सति ।[५]

द्रव्य के रहने पर फटा-पुराना तथा गन्दा कपड़ा नहीं पहनना चाहिये ।

वस्त्रोपानहमाल्योपवीतानि अन्यधृतानि न धारयेत् ।[६]

दूसरों के धारण किये हुए वस्त्र, उपानह (जूता) माला एवं यज्ञोपवीत का धारण नहीं करना चाहिये ।

प्रसाधितकेशः ।[७]

शिर के बालों को साफ-सुथरा और सवाँर कर रखना चाहिये ।

न रूढश्मश्रुरकस्मात् ।[८]

विना किसी विशेष कारण के दाढ़ी-मूँछ बढ़ा कर नहीं रखना चाहिये ।

अलंकृतश्च तिष्ठेत् ।[९]

कुछ अगूँठी आदि अलङ्कार पहने रहना चाहिये ।

४—मार्कण्डेय पुराण अ० ३४, ८६·

५—मनुस्मृति ४, ३४·

६—विष्णुस्मृति ७१, ४६·

७—चरकसंहिता सूत्रस्थान अ० ८·

८—गौतम स्मृति·

९—विष्णुस्मृति·

त्रिः पक्षस्य केश-श्मश्रु-लोम-नखान् संहारयेत् ।[१०]

पक्ष में तीन बार बाल कटाना चाहिये, तीन बार दाढ़ी बनवानी चाहिये तथा तीन बार लोम एवं नख कटवाना चाहिये ।

वयोऽनुरूपं वेशं कुर्यात् श्रुतस्याभिजनस्य धनस्य देशस्य च ।[११]

अपनी अवस्था, विद्वत्ता, कुल, सम्पत्ति और देश के अनुरूप वेश धारण करना चाहिये ।

कल्पः-केश-नख-श्मश्रुर्दान्तः शुक्लाम्बरः शुचिः ।[१२]

केश, नख एवं दाढ़ी बनवाये रहना चाहिये, शिष्ट एवं सभ्य व्यवहार रखना चाहिये, सफेद वस्त्र पहनना चाहिये तथा पवित्र एवं साफ-सुथरा रहना चाहिये ।

१०--चरकसंहिता सूत्रस्थान अ० ८.

११--विष्णुस्मृति, ७१.

१२--मनुस्मृति ४, ३५.

८—संभाषण

पूर्वाभिभाषी ।[1]

यदि कोई परिचित व्यक्ति मिले अथवा कोई मिलने के लिये आवे तो उससे पहले अपनी ही ओर से बोलने का आरंभ करना चाहिये। इस प्रतीक्षा में नहीं रहना चाहिये कि जब वह पहले बोले तो हम बोलें।

स्मितपूर्वाभिभाषी ।[2]

स्मितयुक्त एवं प्रसन्न मुखमुद्रा में बातें करनी चाहिये, गंभीर अथवा उदास मुखमुद्रा में नहीं।

परमर्मस्पर्शकरम् अश्रद्धेयम् असत्यम् अतिमात्रं च न भाषेत ।[3]

दूसरे के मर्म को पीड़ा पहुंचाने वाली बात नहीं बोलनी चाहिये, विश्वास न करने योग्य बात नहीं बोलनी चाहिये, झूठी बात नहीं बोलनी चाहिये तथा मात्रा से अधिक बात नहीं बोलनी चाहिये।

बह्वल्पार्थाक्षरं कुर्यात् संलापं कार्यसाधकम् ।[4]

बातचीत में ऐसी भाषा का प्रयोग करना चाहिये जिसमें अक्षर तो थोड़े हों पर अर्थ अधिक हो और कार्य भी सिद्ध हो जाय।

न विगृह्य कथां कुर्यात् ।[5]

१–२—चरकसंहिता, सूत्रस्थान अ० ७.

३—नीतिवाक्यामृत १७, २८, ५३.

४–५—शुक्रनीति अ० ३.

लड़ने-झगड़ने के समान बातें नहीं करनी चाहिये, शान्ति और शिष्टता के साथ बातें करनी चाहिये।

न च हास्येन भाषणम्।[६]

सर्वदा हँस-हँस कर बातें नहीं करनी चाहियें, जहाँ उचित हो वहीं हँस कर बातें करनी चाहिये।

कथाभङ्गं न कुर्वीत।[७]

कोई बात चल रही हो तो उसके बीच में टोक कर या अन्य प्रसंग लाकर उसे तोड़ना नहीं चाहिये।

अयुक्तं यत् कृतं चोक्तं न बलाद् हेतुनोद्धरेत्।[८]

यदि कोई अनुचित काम कर दिया हो और यदि कुछ अनुचित बोल दिया हो तो उसे बलपूर्वक अनुचित तर्कों से उचित सिद्ध करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये।

अपशब्दाश्च नो वाच्या मित्रभावाच्च केष्वपि।[९]

मित्रभाव से भी किसी के प्रति अपशब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

६—आमोद-प्रमोद

पञ्च नाडिका हास्यक्रीडा स्निग्धैः ।[१]

पाँच नाड़ी पर्यन्त प्रियमित्रों के साथ हास्य-विनोद एवं क्रीड़ा करनी चाहिये ।

तुल्यशीलवयोभिः क्रीडितव्यम् ।[२]

समान शील और समान अवस्था वालों के साथ खेलना चाहिये ।

क्रीडेन्नाज्ञैः ।[३]

जो खेलना न जानते हों उनके साथ नहीं खेलना चाहिये ।

तथा न क्रीडयेत् कैश्चित् कलहाय यथा भवेत् ।[४]

खेल में ऐसी कोई बात नहीं होनी चाहिये जिससे खेलने वालों में परस्पर झगड़ा हो जाय ।

गृहीतप्रसाधनस्य अपराह्णे गोष्ठीविहाराः ।[५]

दिन का काम करने के बाद अपराह्न में विहारोचित वेशभूषा धारण कर मित्रों के साथ गोष्ठीविहार करना चाहिये ।

१—बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र १ ३६.

२— ,, ,, १ २४.

३—स्कन्दपुराण ब्रा० ध० ६, ७१.

३—शुक्रनीति अ० ३.

५-६-७—वात्स्यायन कामसूत्र, अधि० १, अ० ४, २२, २३, २६.

प्रदोषे च संगीतकानि ।[1]

सन्ध्यासमय संगीत का आयोजन रखना चाहिये ।

घटानिबन्धनं, गोष्ठीसमवायः, समापानकम् , उद्यानगमनम्, समस्याक्रीडाश्च प्रवर्तयेत् ।[2]

समय समय पर विशिष्टरूप से सामूहिक पूजानुष्ठान तथा देवदर्शनार्थ सामूहिक यात्रा, काव्यकलाविषयक गोष्ठी, जलपानगोष्ठी, उद्यानभ्रमण या वनविहार तथा सामूहिक खेलकूद का भी आयोजन करना चाहिये ।

१०—सभा-सम्मेलन

आयुक्तप्रदिष्टायां भूमौ अनुज्ञातः प्रविशेत् ।[1]

किसी सभा-सम्मेलन में जाने पर वहाँ के व्यवस्थापक द्वारा निर्दिष्ट स्थान में उनकी अनुमति से प्रवेश करना चाहिये ।

विगृह्यकथनम्; असभ्यम, अप्रत्यक्षम्, अश्रद्धेयम् अनृतं च वाक्यम्; उच्चैरनर्मणि हासम्; वात-ष्ठीवने च शब्दवती न कुर्यात् ।[2]

सभा में झगड़ते हुए बातें नहीं करनी चाहिये, असभ्य की तरह बातें नहीं करनी चाहिये, गोपनीय अविश्वनीय तथा अनृत बातें नहीं बोलनी चाहिये ।

१–२—कौटिलीय अर्थशास्त्र, योगवृत्त, अ० ४.

विना हास्य-प्रसंग के जोर से नहीं हँसना चाहिये तथा अपानवायु का उत्सर्ग एवं थूक-खँखार शब्दयुक्त नहीं करना चाहिये।

न तत्र उपविशेद् यत एनमन्य उत्थापयेत्।[३]

सभा में विना सोचे-विचारे किसी ऐसे स्थान पर नहीं बैठ जाना चाहिये जहाँ से उसे कोई दूसरा व्यक्ति उठा दे। अपने योग्य स्थान पर ही बैठना चाहिये।

विजृम्भण-क्षुतोद्गार-हास्यादीन् पिहिताननः।
कुर्यात् सभासु नो नासाशोधनं हस्तमोटनम्॥[४]

सभाओं में विजृम्भण (जँभाई), क्षुत (छींक), उद्गार (ढँकार) तथा हास्य आदि मुँह ढँक कर करना चाहिये। इसी प्रकार नाक की सफाई तथा हाथ एवं अँगुली आदि के तोड़ने-मरोड़ने का काम भी सभाओं और बैठकों में नहीं करना चाहिये।

कुर्यात् पर्यस्तिकां नैव न च पादप्रसारणम्।
न निद्रां विकथां वापि सभायां कुक्रियां न च॥[५]

सभाओं में पलत्थी मार कर अथवा पाँव पसार कर नहीं बैठना चाहिये, ऊँघना नहीं चाहिये, व्यर्थ की बातें या विपरीत प्रसंग की बातें नहीं करनी चाहिये तथा और भी किसी प्रकार का अनुचित आचरण या चेष्टा नहीं करनी चाहिये।

३—बौधायन स्मृति प्र० २, अ० ३, ५६.

४-५—विवेकविलास अ० २, ९४-९५.

या गोष्ठी लोकविद्विष्टा या च स्वैरविसर्पिणी।
परहिंसात्मिका या च न तामवतरेद् बुधः ॥[६]

जो गोष्ठी या सभा-समिति लोकसम्मत न हो, जो सर्वथा स्वतन्त्र और निरंकुश हो तथा दूसरों की हानि तथा निन्दा के लिये की गई हो उसमें बुद्धिमान् व्यक्ति को नहीं जाना चाहिये।

११—पारिवारिक कर्तव्य

माता-पिता की सेवा

यं मातापितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ॥[१]

मनुष्यों की उत्पत्ति तथा उनके भरण-पोषण एवं संवर्द्धन में माता एवं पिता को जो क्लेश और कठिनाई होती है उसका बदला सैकड़ों वर्षों में भी नहीं दिया जा सकता।

तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा।
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ॥[२]

६—वात्स्यायन कामसूत्र अधि० १ अ० ४, ५१.

१, २,—मनुस्मृति अ० २, २२७, २२८.

इसलिये माता-पिता का तथा आचार्य का भी सदा प्रिय करना चाहिये। क्योंकि इन तीनों के संतुष्ट रहने पर समस्त तप और धर्मकार्य परिपूर्ण हो जाते हैं।

तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमं तप उच्यते।
न तैरनभ्यनुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत्॥[3]

इन तीनों की अर्थात् माता, पिता एवं आचार्य की सेवा सबसे बड़ा तप कहा गया है। इन तीनों की आज्ञा लिये बिना अन्य धर्मों का आचरण नहीं करना चाहिये।

सर्वं तस्यादृता धर्मा यस्यैते त्रय आदृताः।
अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः॥[4]

जो व्यक्ति इन तीनों का आदर करता है उसके सभी धर्मकार्य पूरे हो जाते हैं। और जो व्यक्ति इन तीनों का अनादर करता है उसके सभी धर्म-कर्म निष्फल हैं, बेकार हैं।

यावत् त्रयस्ते जीवेयुस्तावन्नान्यं समाचरेत्।
तेष्वेव नित्यं शुश्रूषां कुर्यात् प्रियहिते रतः॥[5]

जब तक वे तीनों जीते रहें तब तक दूसरा धर्म-कर्म करने की आवश्यकता नहीं। उन्हीं की नित्य सेवा-शुश्रूषा करनी चाहिये और उनके लिये जो कुछ प्रिय और हितकर हो उसी के सम्पादन में निरत रहना चाहिये।

३, ४, ५—मनुस्मृति अ० २, २२६, २३४, २१५.

पति-पत्नी का सौहार्द

सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥[६]

जिस कुल में पत्नी से पति और पति से पत्नी परस्पर सन्तुष्ट और प्रसन्न रहते हैं उसका सदा कल्याण होता है, यह सुनिश्चित है। इसलिये पति और पत्नी दोनों को विचारों, कार्यों एवं व्यवहार में ऐसा सामञ्जस्य, सौहार्द एवं सहिष्णुता रखनी चाहिये कि दोनों ही दोनों से सन्तुष्ट एवं प्रसन्न रहें। यही पति-पत्नी का परम कर्तव्य और धर्म है।

भाई-बहन का प्रेम

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा ।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥[७]

भाई भाई से द्वेष न करे, बहन बहन से द्वेष न करे। भाई और बहन सब एक विचार तथा एक व्रत हो मिलजुल कर रहें तथा कल्याणमयी वाणी का परस्पर व्यवहार करें।

भ्राता ज्येष्ठः समः पित्रा भार्या पुत्रः स्वका तनूः ।
छाया स्वो दासवर्गश्च दुहिता कृपणं परम् ॥
तस्मादेतैरधिक्षिप्तः सहेतासंज्वरः सदा ।[८]

६—मनुस्मृति अ० ३, ६०.

७—अथर्ववेद का० ३ सू० ३०, ३.

८—मनुस्मृति अ० ४, १८४–१८५.

ज्येष्ठ भ्राता पिता के तुल्य होता है, स्त्री और पुत्र अपने ही शरीर हैं। दासवर्ग (नौकर-चाकर) अपनी छाया के समान ही अपने अभिन्न अंग हैं और लड़की परम कृपा का पात्र है। अतः ये लोग यदि कभी कुछ अप्रिय भी बात कहें तो उसे मन में बिना कुछ दुर्भाव के रखे सहन कर लेना चाहिये। उसमें अपना अपमान नहीं समझना चाहिये।

पुत्रों का लालन-पालन तथा शिक्षण

चतुर्वर्षावधि सुतान् लालयेत् पालयेत् पिता।
ततः षोडशपर्यन्तं गुणान् विद्यां च शिक्षयेत्॥[९]

पिता को चार वर्षों तक पुत्रों का लालन तथा पालन करना चाहिय तथा पाचवें वर्ष से लेकर सोलहवें वर्ष तक उन्हें विविध गुणों और विद्याओं की शिक्षा देनी चाहिये।

कन्याऽप्येवं लालनीया शिक्षणीया प्रयत्नतः।[१०]

इसी प्रकार कन्या का भी लालन-पालन करना चाहिए और उसे भी यत्नपूर्वक शिक्षा देनी चाहिए।

कुमारमायौवनप्राप्तेः धर्मार्थकौशलागमनाच्च अनुपालयेत्।[११]

जब तक लड़का युवा न हो तब तक उसे धर्म, अर्थ एवं अन्यान्य विद्याओं में निपुण बनाते हुए उसका पालन-पोषण करना चाहिए।

न बालकान् निर्भत्सयेत्।[१२]

बालकों को डेरवाना-धमकाना नहीं चाहिए। उन्हें निर्भीक एवं साहसी बनाना चाहिए।

९-१०—महानिर्वाण तन्त्र, ४५.
११—चरकसंहिता, शारीरस्थान अ० ८, ६८.
१२—विष्णुस्मृति अ० ६८.

१२—श्रेष्ठजन-समादर

विनय-बुद्धि-विद्याऽभिजन-वयो-वृद्ध-सिद्धाचार्याणामुपासिता।[1]

जो लोग विनय, बुद्धि, विद्या, अभिजन (कुल) तथा अवस्था में बड़े हों, जो सिद्ध पुरुष हों तथा जो आचार्य हों उनके सहवास तथा सेवा-शुश्रूषा में रहना चाहिए।

अभिवादयेद् वृद्धांश्च, दद्याच्चैवासनं स्वकम्।
कृताञ्जलिरुपासीत, गच्छतः पृष्ठतोऽन्वियात्॥[2]

यदि अपने से बड़े लोग घर पर आ जाँय तो उनका अभिवादन करना चाहिए, उन्हें अपना आसन देना चाहिए।

हाथ जोड़कर, विनम्रता के साथ, उनके पास रहना चाहिए, तथा जब जाने लगें तो कुछ दूर तक उनके पीछे-पीछे जाना चाहिए।

शय्याऽसनेऽध्याचरिते श्रेयसा न समाविशेत्।[3]

जिस शय्या और आसन पर अपने से बड़े लोग सोते-बैठते हों उस पर स्वयं नहीं सोना-बैठना चाहिए।

शय्याऽसनस्थश्चैवेनं प्रत्युत्थायाऽभिवादयेत्।[4]

बड़े लोगों के आने पर शय्या और आसन पर से उठकर उनका अभिवादन करना चाहिए, सोये-सोये या बैठे-बैठे नहीं।

१—चरकसंहिता, सूत्र स्थान अ० ८.
२—मनुस्मृति अ० ४.
३-४—मनुस्मृति अ० २, ११६.

त्वङ्कारं नामधेयं च ज्येष्ठानां परिवर्जयेत् ।[५]

अपने से बड़े लोगों को तुम कहकर तथा नाम लेकर संबोधित नहीं करना चाहिये। उन्हें उनकी जातीय उपाधि अथवा योग्यता सम्बन्धी उपाधि से सम्बोधित करना चाहिये।

वाक्येन वाक्यस्य प्रतीघातमाचार्यस्य वर्जयेत् श्रेयसां च ।[६]

जब अपने आचार्य तथा अपने से श्रेष्ठ पुरुषों से बातचीत होती हो तो अपने वाक्य से उनके वाक्यों को बीच में तोड़ना नहीं चाहिये। जब उनका वाक्य समाप्त हो जाय तब स्वयं बोलना चाहिये।

राज्ञो नानुकृतिं कुर्यात् न च श्रेष्ठस्य कस्यचित् ।[७]

राजा का तथा किसी भी श्रेष्ठ पुरुष की किसी बात का उपहास बुद्धि से अनुकरण (नकल) नहीं करना चाहिये।

अधस्तादिव हि श्रेयस उपचारः ।[८]

बड़े लोगों की सेवा-शुश्रूषा खूब विनम्रता के साथ करना चाहिये और उनके पास स्वयं छोटा बन कर रहना चाहिये।

५—महाभारत, शान्तिपर्व, अ० १६३.
६—आपस्तम्ब धर्मसूत्र प्र० २.
७—शुक्रनीति अ० २.
८—शतपथ ब्राह्मण का० १, अ० १, ब्रा० १.

१३—अतिथि-सत्कार

अतिथिमभ्यागतं पूजयेद् यथाविधि ।[१]

अपने घर में आये हुये अतिथि का विधिपूर्वक आदर-सत्कार करना चाहिये ।

गृहागतं क्षुद्रमपि यथार्हं पूजयेत् सदा ।[२]

यदि अपने घर कोई अति सामान्य व्यक्ति भी आ जाय तो उस का भी सदा यथायोग्य आदर-सत्कार करना चाहिये ।

तमभिमुखोऽभ्यागम्य यथायोग्यं यथावयः समेत्य तस्यासन-माहारयेत् ।[३]

अतिथि के सामने आकर तथा अपनी और उसकी अवस्था (उम्र) के अनुसार प्रणामाशीर्वाद के साथ मिल कर उसे बैठने के लिये आसन देना चाहिये ।

सान्त्वयित्वा तर्पयेद् रसैः भक्ष्यैरद्भिरवण्र्यैनेति ।[४]

अतिथि को मधुर वाणी तथा आसन आदि से आश्वस्त कर-आराम देकर, स्वादिष्ट भोज्य पदार्थों से, पानी से तथा उत्तम अर्घ्य से तृप्त करना चाहिये ।

शेषभोजी अतिथीनां स्यात् ।[५]

१—चाणक्यसूत्र, अ० २.

२—शुक्रनीति, अ० ३, १००.

३—आपस्तम्ब धर्मसूत्र प्र० २.

अतिथि के भोजन के बाद स्वयं भोजन करना चाहिये।

सहासीत।[९]

अतिथि के साथ बैठना चाहिये। अकेले नहीं छोड़ देना चाहिये।

प्रदोषे अनुज्ञाप्य शयीत।[७]

रात में अतिथि को सूचित कर और उसकी आज्ञा लेकर शयन करना चाहिये।

पूर्वं प्रतिबुध्येत।[८]

अतिथि के जागने के समय से पूर्व जागना चाहिये।

प्रस्थितमनुव्रजेत्।[९]

अतिथि जब जाने लगें तो कुछ दूर तक उनके पीछे पीछे जाना चाहिये—उन्हें पहुँचाना चाहिये।

यानवन्तमायानात्।[१०]

यदि अतिथि किसी सवारी पर आये हों तो उन्हें सवारी तक पहुँचाना चाहिये।

यावत् नानुजानीयादितरः।[११]

बिना सवारी के अतिथि जब तक लौटने के लिये न कहें तब तक उन्हें पहुंचाना चाहिये।

अप्रतीभायां सीम्नो निवर्तेत।[१२]

यदि अतिथि नासमझी के कारण लौटने के लिये न कहें तो उन्हें सीमा तक पहुंचा कर लौट आना चाहिये।

१०-१२—आपस्तम्ब धर्मसूत्र प्र० २.

१४—सबके साथ स्नेह-सहानुभूति

तथा च सर्वभूतेभ्यो वर्तितव्यं यथाऽत्मनि ।[१]

समस्त प्राणियों के साथ अपने ही जैसा व्यवहार करना चाहिये ।

वात्सल्यात् सर्वभूतेभ्यो वाच्याः श्रोत्रसुखा गिरः ।[२]

सब के साथ स्नेहपूर्ण तथा कानों को सुखकर प्रतीत होने वाली वाणी बोलनी चाहिये ।

अवृत्ति-व्याधि-शोकार्तानुवर्तेत शक्तितः ।
आत्मवत् सततं पश्येदपि कीट-पिपीलकम् ॥[३]

वृत्तिहीन, व्याधिग्रस्त तथा शोकार्त लोगों की यथाशक्ति सहायता एवं सेवा-शुश्रूषा करनी चाहिये तथा कीट और पिपीलिका को भी सदा अपनी ही भाँति समझना चाहिये ।

मूकाऽन्ध-बधिर-व्यङ्गा नोपहास्याः कदाचन ।[४]

गूँगे, अन्धे, बहरे तथा अङ्गविकल लोगों का कभी उपहास नहीं करना चाहिये ।

१—महाभारत शान्तिपर्व, अ० १६८.
२— ,, ,, अ० १६१.
३—शुक्रनीति अ० ३, ८, ६.
४— ,, २.

कृपणाऽतुराऽनाथ-व्यङ्ग-विधवा-बाल-वृद्धान्
औषधाऽवसथाऽसनाच्छादनैर्बिभृयात् ।[५]

गरीब, रोगी, अनाथ, अङ्गहीन, विधवा, बालक तथा वृद्ध लोगों की औषध, निवास, भोजन तथा वस्त्र आदि से भरण-पोषण करना चाहिये।

हीनाङ्गान् अतिरिक्ताङ्गान् विद्याहीनान् वयोधिकान् ।
रूप-द्रव्य-विहीनांश्च जातिहीनांश्च नाक्षिपेत् ॥[६]

हीन अङ्ग वाले, अधिक अङ्ग वाले, मूर्ख, बूढ़े, कुरूप, गरीब तथा हीन जाति के मनुष्यों को आक्षेपयुक्त वचन नहीं बोलना चाहिये, उनका तिरस्कार नहीं करना चाहिये।

सर्वप्राणभृतां शर्म आशासितव्यमहरहः उत्तिष्ठता च उपविशता च ।[७]

प्रतिदिन उठते और बैठते समय समस्त प्राणियों के मङ्गल की कामना करनी चाहिये।

प्रत्यक्षं च परोक्षं च परेषामाचरेत् प्रियम् ।[८]

प्रत्यक्ष रूप से और परोक्ष रूप से भी दूसरों का प्रिय करना चाहिये।

५—शंखलिखित स्मृति.
६—मनुस्मृति ४, १४१.
७—चरकसंहिता वि० अ० ८.
८—विष्णु धर्मोत्तर पुराण २१३, ३.

१५—दिनचर्या

ब्राह्मे मुहूर्ते बुद्ध्येत । [1]

ब्राह्म मुहूर्त में जागना चाहिये। रात्रि का अन्तिम प्रहर ब्राह्म मुहूर्त या ब्रह्मवेला कहलाता है।

ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय इतिकर्तव्यतायां समाधिमुपेयात् । [2]

ब्राह्म मुहूर्त में उठ कर अपने दिन भर के करणीय कर्तव्यों के सम्बन्ध में शान्ति के साथ चिन्तन करना चाहिये।

मातापितरमुत्थाय पूर्वमेवाभिवादयेत् ।
आचार्यमथावाऽप्यन्यं तथायुर्विन्दते महत् । [3]

सोकर उठने के बाद पहले माता-पिता, आचार्य तथा जो कोई भी श्रेष्ठ पुरुष हों उन्हें प्रणाम करना चाहिये। ऐसा करने से उस व्यक्ति की आयु बढ़ती है।

दूरादावसथान्मूत्रं पुरीषं च समुत्सृजेत् । [4]

मूत्र तथा पुरीष घर से दूर जाकर करना चाहिये। (यह दूर जाने का नियम ग्रामीण क्षेत्र के लिये है)।

१—मनुस्मृति अ० ४, ९२.

२—नीति वाक्यामृत २५, १.

३—महाभारत अनुशासन पर्व अ० १०४, ४३.

४—विष्णुपुराण अ० ३, अ० ११.

कुर्यान्मूत्र-पुरीषे तु शुचौ देशे समाहितः ।[५]

मूत्र तथा पुरीष स्वच्छ स्थान पर तथा ठीक तरह सावधान हो कर करना चाहिये। यदि घर में ही शौचालय तथा मूत्रालय हो तो उसे सदा स्वच्छ रखना चाहिये।

ग्रामावसथतीर्थानां क्षेत्राणाञ्चैव वर्त्मनि ।
विण्मूत्रं नानुतिष्ठेत ।[६]

गाँव के रास्ते पर, घर के रास्ते पर, नदी तालाब और देवालय आदि पवित्र स्थानों के रास्ते पर तथा खेत के रास्ते पर मूत्र और पुरीषोत्सर्ग नहीं करना चाहिये।

पथिकविश्राम्त्यु पयोगिच्छायायां न विसृजेत् ।[७]

पथिकों के लिये विश्रामयोग्य छाया में मूत्र और पुरीष का उत्सर्ग नहीं करना चाहिये।

गन्धलेपावसानं शौचमाचरेत् ।[८]

पुरीषोत्सर्ग के बाद मिट्टी आदि से उतनी बार हाथ धोना चाहिये जिससे दुर्गन्ध दूर हो सके।

यस्मिन् स्थाने कृतं शौचं वारिणा तत्तु शोधयेत् ।[९]

५—अङ्गिरःस्मृति.

६—मार्कण्डेय पुराण अ० ३४, २२

७—हिरण्यकेशि गृह्यशेषसूत्र प० १, २.

८—नीति वाक्यामृत २५, १२.

९—आह्निक सूत्रावलि.

जिस स्थान पर हाथ-पैर आदि की सफाई करे उसे पानी से धो देना चाहिये।

मुखे पर्युषिते नित्यं भवत्यप्रयतो नरः।
दन्तधावनमुद्दिष्टं जिह्वोल्लेखनिका तथा ॥[१०]

मुँह के पर्युषित (वासी) होने पर मनुष्य सदा अशुद्ध रहता है अतः दन्तधावन और जीभ की सफाई प्रतिदिन करनी चाहिये।

एकैकं घर्षयेद् दन्तं मृदुना कूर्चकेन तु।
दन्तशोधनचूर्णेन दन्तमांसान्यबाधयन् ॥[११]

दातुन के मुलायम कूचे से किसी दन्तधावन चूर्ण के साथ एक एक दांत को रगड़ना चाहिये तथा इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि इससे मसूढ़ों को कष्ट न हो।

प्रक्षाल्य भक्षयेत् काष्ठं प्रक्षाल्यैव विसर्जयेत्।[१२]

दाँतुन को धोकर करना चाहिये तथा धोकर ही उसे फेंकना चाहिये।

सुखं व्यायाममभ्यसेत्।[१३]

जो अपने लिये सुखकर और सुविधाजनक हो ऐसा व्यायाम करना चाहिये।

१०—अत्रिस्मृति.

११—स्वस्थवृत्त समुच्चय.

१२—स्वस्थ पुरुष.

१३—शुक्रनीति, अ० ३, १०८.

इक्षुरापः पयो मूलं फलं ताम्बूलभक्षणम् ।
भक्षयित्वाऽपि कर्तव्याः स्नानदानादिकाः क्रिया ॥[१४]

ईख, पानी, दूध, मूल, फल तथा पान इन वस्तुओं का ग्रहण करने के बाद भी स्नान-दान तथा-पूजा-पाठ आदि कार्य किये जा सकते हैं। अतः यदि स्नान में बिलम्ब हो तो उसके पूर्व दूध या फल-मूल आदि ले लेना चाहिये।

नित्यस्नायी स्यात् ।[१५]

स्वस्थ अवस्था में प्रतिदिन स्नान करना चाहिये।

गङ्गादि-पुण्यतीर्थानि कृत्रिमादिषु सस्मरेत् ।[१६]

कल और कुआँ आदि कृत्रिम स्थानों पर स्नान करते समय गङ्गा आदि पुण्य नदियों का स्मरण करना चाहिये।

अशिरस्कं भवेत् स्नानं स्नानाशक्तौ तु कर्मिणाम् ।
आर्द्रेण वाससा वा स्यान्मार्जनं दैहिकं विदुः ।[१७]

यदि पूरा स्नान करना संभव न हो तो शिर बचाकर स्नान कर लेना चाहिये और यदि यह भी संभव न हो तो गीले कपड़े से देह पोंछ लेना चाहिये।

स्नानस्यानन्तरं सम्यक् वस्त्रेण तनुमार्जनम् ।[१८]

१४—आह्निकसूत्रावलि.
१५—विष्णुस्मृति, ६४, ३६.
१६—वृद्धपाराशर स्मृति, २, १२५.
१७—जाबालि स्मृति.
१८—स्वस्थ पुरुष.

स्नान के बाद कपड़े से शरीर को अच्छी तरह मल-मल कर पोंछ लेना चाहिये।

आचम्य प्रयतो नित्यमुभे सन्ध्ये समाहितः।
शुभे देशे जपं जप्यन्नुपासीत यथाविधि ॥[१९]

स्नान के बाद आचमन कर तथा पवित्र होकर प्रतिदिन दोनों सन्ध्या समय सावधान हो पवित्र स्थान पर अपने अपने सम्प्रदाय के अनुसार जप करते हुये यथाविधि उपासना करनी चाहिये।

अष्टोत्तरशतं नित्यमष्टाविंशतिरेव वा।
विधिना दशकं वापि त्रिकालेषु जपेद्बुधः ॥[२०]

प्रतिदिन तीनों सन्ध्यासमय अर्थात् प्रातःकाल, मध्यान्ह तथा सायंकाल एक सौ आठ वार अथवा अठ्ठाइस वार अथवा दश वार भी गायत्री मन्त्र का अथवा अपने सम्पदाय के अनुसार किसी मन्त्र का जप करना चाहिये।

स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन् होमैर्देवान् यथाविधि।
पितॄञ्श्राद्धेन नृनन्नै र्भूतानि बलिकर्मणा ॥[२१]

स्वाध्याय अर्थात् वेद-उपनिषद् आदि के अध्ययन द्वारा ऋषियों की, हवन द्वारा देवताओं की, श्राद्ध द्वारा पितरों की, अन्न द्वारा मनुष्यों (अतिथियों) की तथा बलिकर्म (भोजन दान) द्वारा अन्य पशु-पक्षियों

१९—मनुस्मृति, अ० २, २२२.

२०—व्यासस्मृति.

२१—मनुस्मृति, अ० ३, ८०.

की अर्चा करनी चाहिये। यह पाँचो कर्म नित्य के कर्म कहे गये हैं तथा पञ्च महायज्ञ कहलाते हैं।

यथोक्त-गुणसम्पन्नं नित्यं सेवेत भाजनम्।
विचार्य देशकालादीन् कालयोरुभयोरपि॥[२१]

देश और काल का ध्यान रखते हुए प्रातः सायं दोनों समय शास्त्रोक्त गुणों से सम्पन्न अर्थात् स्वादिष्ट एवं स्वास्थ्यकर भोजन करना चाहिये।

उष्णम् अश्नीयात्।[२२]

गर्म भोजन करना चाहिये।

स्निग्धम् अश्नीयात्।[२३]

घी, दूध एवं दही आदि स्निग्ध पदार्थों से युक्त भोजन करना चाहिये।

मात्रावद् अश्नीयात्।[२४]

मात्रा से युक्त भोजन करना चाहिये। अपरिमित नहीं।

जीर्णे अश्नीयात्।[२५]

पच जाने पर भोजन करना चाहिये।

वीर्याविरुद्धम् अश्नीयात्।[२६]

अपनी पाचनशक्ति के अनुकूल भोजन करना चाहिये।

इष्टे देशे अश्नीयात्।[२७]

मन को पसन्द पड़ने लायक स्थान पर भोजन करना चाहिये।

२२-३१—चरकसंहिता, विमानस्थान अ० १, २६-३८.

न अतिद्रुतम् अश्नीयात् ।[२८]

बहुत जल्दी जल्दी भोजन नहीं करना चाहिये ।

न अतिविलम्बितम् अश्नीयात् ।[२९]

बहुत धीरे धीरे नहीं खाना चाहिये ।

अजल्पन् अहसन् तन्मना भुञ्जीत ।[३०]

अधिक बातें करते हुए या हँसते हुए भोजन नहीं करना चाहिये, तथा तन्मय होकर भोजन करना चाहिये ।

आत्मानम् अभिसमीक्ष्य भुञ्जीत सम्यक् ।[३१]

अपनी प्रकृति और शक्ति को ठीक तरह समझ कर भोजन करना चाहिये ।

समानमेकपङ्क्त्यां तु भोज्यमन्नम् ।[३२]

एक पंक्ति में यदि अनेक व्यक्ति भोजन करते हों तो उनके खाद्य-पेय वस्तुओं में समानता रहनी चाहिये, भेद नहीं होना चाहिए ।

बहूनां भुञ्जतां मध्ये न चाश्नीयात् त्वरान्वितः ।[३३]

जहाँ बहुत लोग भोजन करते हों वहाँ भोजन करने में शीघ्रता नहीं करनी चाहिये । सबके साथ भोजन करना चाहिये ।

युक्तं चश्चवाशब्दैर्नाद्याद् वक्त्रविकारवान् ।[३४]

चप् चप् शब्द करते हुए तथा मुखाकृति को विकृत बनाते हुए भोजन नहीं करना चाहिये ।

३२—महाभारत अनु० १०४, ९८.

३३—आह्निकसूत्रावलि.

३४—विवेक विलास.

निषण्णश्चापि खादेत न तु गच्छन् कदाचन ।[३५]

बैठ कर भोजन करना चाहिये, चलते-फिरते नहीं ।

न वृथा विसृजेदन्नम् ।[३६]

विना प्रयोजन के थाली में व्यर्थ अन्न नहीं छोड़ना चाहिये ।

भोजनगृहे न आचामेत् ।[३७]

जिस घर में भोजन करे वहाँ हाथ-मुँह नहीं धोना चाहिये ।

भोजने दन्तलग्नानि निर्हृत्याचमनं चरेत् ।[३८]

भोजन करते समय दातों में जो अन्न लगा हो उसे तिनका आदि से ठीक तरह से निकाल कर आचमन (अचँवन) करना चाहिये ।

आचम्य जलयुक्ताभ्यां पाणिभ्यां चक्षुषी स्पृशेत् ।[३९]

हाथ-मुँह धोने के पश्चात् गीले हाथों से दोनों आँखों का स्पर्श करना चाहिये ।

गृहस्थो नियतं कुर्यात् नैव तिष्ठेन्निरुद्यमः ॥[४०]

इस प्रकार दैनिक नित्य क्रिया से निवृत्त होकर अध्ययन अथवा गृह-कार्य सम्बन्धी जो भी नियत काम हों उन्हें करना चाहिये । कभी भी निरुद्यम अर्थात् बेकार नहीं रहना चाहिये ।

३५—महाभारत अनु० १०४, ६१.

३६—ब्रह्मपुराण.

३७—धर्मसिन्धु पूर्वार्द्ध, तृतीय परिच्छेद.

३८—स्वस्थ पुरुष.

३९—आह्निक संग्रह.

४०—महानिर्वाण तन्त्र ६२.

कार्यं विना यदुद्यान-नगराद्युपसर्पणम् ।
वृथाटनं, तत् शस्तं तु शरीरालस्यशान्तये ॥[४२]

बिना विशेष आवश्यकता के, बेकार भी, सायं काल बाग-बगीचे तथा नगर आदि में भ्रमण करना चाहिये । इससे शरीर का आलस्य नष्ट होता है और शरीर में स्फूर्ति आती है ।

ग्रामे च यान्यगाराणि देवतानां तदीक्षणात् ।
लोकयात्रेति कथिता तां कुर्वन् पुण्यभाग् भवेत् ॥[४३]

अपने ग्राम तथा नगर में जो देवमन्दिर आदि पवित्र स्थान हों, उनमें भी सायंकाल देवदर्शन के लिये जाना चाहिये । इसे लोकयात्रा कहते हैं और इस नियम का पालन करने से मनुष्य पुण्यभागी बनता है ।

न सन्ध्यासु अभ्यवहाराऽध्ययन-स्त्री-स्वप्न-सेवी स्यात् ।[४४]

सन्ध्या के समय भोजन, अध्ययन, स्त्रीप्रसंग तथा निद्रा का सेवन नहीं करना चाहिये ।

सन्ध्याप्रदीपं प्रज्वाल्य प्रणमेत्तदनन्तरम् ।[४५]

सन्ध्या के समय दीपक जलाकर उसे प्रणाम करना चाहिये ।

देवतां नत्वा स्मरणं च कृत्वा वैणवदण्डमुदपात्रं च शयन-समीपे निधाय प्रक्षालितपादः शयनं कुर्यात् ।[४६]

४२—श्येनिक शास्त्र. २, २८.
४३—आह्निक सूत्रावलि.
४४—चरक संहिता, सूत्रस्थान अ० ८.
४५—आह्निक सूत्रावलि.
४६—आश्वलायन गृह्यपरिशिष्ट अ० २ ख, १२.

रात में सोते समय देवता को नमस्कार और स्मरण करना चाहिये तथा एक बाँस का दण्ड और जलपात्र पास में रखकर एवं पैर धोकर शयन करना चाहिये।

हित्वा प्राक्पश्चिमौ यामौ निशि स्वापो वरो मतः।[४७]

पहले और पिछले पहर को छोड़कर बीच के समय में रात में सोना उत्तम है।

दिवाकृतस्य शौचस्य रात्रावर्द्धं विधीयते।
तदर्द्धमातुरस्याहुस्त्वरायां चार्द्धमध्वनि॥[४८]

दिन के लिये विहित शौचाचार का अर्धभाग रात्रि में, उसका भी अर्ध भाग रुग्णावस्था एवं त्वरा में तथा उस का भी अर्ध भाग यात्रा के समय मार्ग में पालनीय होता है।

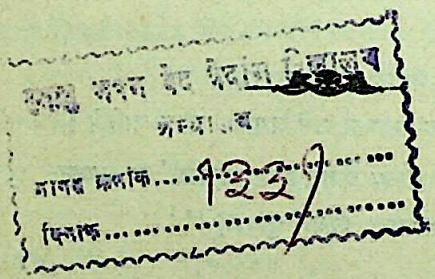

४७—शुक्रनीति अ० ३, १११.

४८—दक्षस्मृति, ५, १३.